द्वितीय अध्याय

नारी और उसका स्थान

SHIVAJI UNIVERSITY
LIBRARY
KOLHAPUR

द्वितीय अध्याय

नारी और उसका स्वरूप ---

नारी भगवान की ही अद्भुत कृति नहीं है, वरन् मानवों की भी अद्भुत सृष्टि है। मनुष्य निरन्तर अपने अन्तरतम नारी को सौंदर्य की विभूति से विभूषित करता है। कविगण स्वर्णिम कल्पना के धागों से उसके लिए एक जाल-सा बुनते रहते हैं। चित्रकार उसके स्वरूप को उसके बाह्य सौंदर्य को अमरत्व प्रदान करते रहते हैं। मानव हृदय की वासना ने सदैव नारी के यौवन को ऐश्वर्य प्रदान किया है। नारी अर्द्ध नारी है और अर्द्ध स्वप्न।

स्मृति ग्रंथों में नारी के व्यक्तित्व एवं समाज में उसकी स्थिति का विशद विवेचन हुआ है। हिंदू धर्म ग्रंथों में एक और नारी की प्रशंसा का प्राचुर्य है, दूसरी ओर नारी की निंदा भी कम नहीं की गई है। नारी-निंदा की यह भावना केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही, संसार के अन्य धर्म ग्रंथों में भी नारी निंदा का प्राबल्य रहा है।

वैदिक काल में भारतीय समाज में नारी का सशक्त व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगत होता है। किंतु उसकी दशा उत्तरोत्तर हीन होती चली जाती है। वैदिक काल में आत्मिक विकास की दृष्टि से स्त्रियां पुरुषों के साथ एक ही क्षेत्र में विचरण करती थी। धार्मिक क्षेत्र में भी उनको पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे, किंतु धीरे-धीरे स्त्रियों की शारीरिक दुर्बलतायें ही उनके लिए अभिशाप बन गई। पुरुषों ने उनके अधिकारों का अपहृत करना प्रारंभ कर दिया। उपनिषदों और ब्राह्मणों के युग में स्त्रियों का सम्मान सैध्दांतिक रूप तक ही रह गया था। स्पष्ट रूप में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत गिरी हुई थी। बौध्द-काल में अनेक स्त्रियां निर्वाण की खोज में भिक्षुणियाँ बनी पर सामाजिक क्षेत्र

में उनकी स्थिति उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी । मध्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते स्त्री बिल्कुल पंगु हो गयी थी । नारी की इस स्थिति के पीछे एक ओर देश की विषम स्थितियाँ थी, तो दूसरी ओर पुरुष का भी इस दिशा में कम हाथ नहीं था ।' [१]

भारतीय वाङ्मय में नारी के लिए अनेक नाम प्रचलित हैं । उनसे उसके समग्र स्वरूप के विभिन्न पक्षों का बोध होता है । नर अथवा नर-धर्म से संबंधित होने के कारण उसे नारी कहा गया है । नारी नाम ही के कारण अनायास नर अर्थात पुरुष से उसका सापेक्ष संबंध जुड़ जाता है । इस तरह नारी शब्द स्वतः संपूर्ण अथवा सर्वथा निरपेक्ष अर्थ का बोधक नहीं, वरन् उसमें शक्ति, सौंदर्य और शालीनता आदि वे सब तत्व समाहित हैं, जो पुरुष से संबंधित हैं । इसके अतिरिक्त अपने दैहिक एवं मानसिक विशिष्ट तत्वों के कारण उसमें अर्थाधिक्य भी विद्यमान है । ऋग्वेद में नारी को 'मेना' कहा गया है, क्योंकि उसे पुरुष सम्मान देते हैं । इसमें लज्जा-भाव का विशेष उद्रेक होने के कारण वह स्त्री कहलाई है । जब नारी स्वयं को पुरुष के प्रति समर्पित कर देती है तब योषा नाम की अधिकारिणी हो जाती है । एक ओर स्वयं लाल साम्यी होने के साथ-साथ पुरुषों में लालसा जागृत करने के कारण 'ललना' नाम ग्रहण करती है । दूसरी ओर वह पुरुष को मत्त, पुलकित और हर्षित करने में समर्थ होने के कारण प्रमदा कहलाती है ।' [२]

---

१ 'महादेवी वर्मा' - श्रृंखला की कड़ियाँ - पृ.९०
सप्तम संस्करण - १९४२, प्रकाशक - भारती भंडार

२ 'डॉ. सतदेव हंस' - 'आचार्य चतुरसेनशास्त्री' - के उपन्यासो में नारी चित्रण - पृ. २
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन,
प्रथम संस्करण - १९७४

' प्राणी-जगत में नारी शब्द नर के समानान्तर है । इसका प्रयोग स्त्रीलिंगवाची मादा ' प्राणियों के प्रतीक रूप में होता है । किंतु मानव-समाज में नारी शब्द इस सामान्य अर्थ में गृहीत नहीं है क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है ।'[१] कोमलता, दृढता, स्पृहा, आदि गुण नर की अपेक्षा नारी में विशेष पाये जाते हैं । यही नहीं, रूप-आकार शरीर संगठन, कार्य-व्यापार एवं जीवन-यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिध्द हुई है । पार्वती, गार्गी, सीता, सावित्री, महारानी लक्ष्मीबाई आदि नारियाँ इन्हीं आदर्शों की प्रमाण हैं ।

नारी को जीवन में बहुत बड़ा स्थान दिया गया है । नारी सर्वश्रेष्ठ है, सभी स्थानोंपर नारी केन्द्र बिंदु है, जीवन का दूसरा नाम साहित्य है और साहित्य का दूसरा नाम जीवन । जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर है । नारी पुरुषत्व का आधार है । बिना इसके मानव अपने जीवन में एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव करता है । संभवत: इसलिए हमारे देवताओं के साथ भी स्त्रियों का नाम जुड़ा रहता है । यथा - सीता-राम, राधेश्याम, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण आदि पुरातन काल से ही नारी को महत्व दिया गया है, नारी सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है । भारतीय साहित्य में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । हिंदू शास्त्रों में नारी को ' श्री ' कहा गया है । नर के ' न ' और ' र ' दोनों ही वर्ण ह्रस्व हैं तथा नारी के दोनों ही दीर्घ हैं । इससे यही द्योतित होता है कि नारी का स्थान नर से ऊँचा है । हमारे शास्त्रों में नारी को अर्ध्दांगिनी कहा गया है, इससे भासित होता है कि नारी को लेकर ही पुरुष पूर्णता प्राप्त करता है । प्राचीन काल में नारी को समाज में पुरुष के समान ही अधिकार एवं सम्मान प्राप्त था । उसकी उपस्थिति के बिना यज्ञ आदि धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं होते थे । सीता

---

१ 'डॉ. सूरदेव हंस' - 'आ. चतुरसेन शास्त्री- के उपन्यास में नारी चित्रण' - पृ. १

प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन,

प्रथम संस्करण - १९७४

की अनुपस्थिति में अश्वमेध यज्ञ करने पर राम को सीता के अभाव की पूर्ति हेतु सीता की प्रतिमा स्थापित करनी पड़ी थी । इसलिए समाज में नारी को शक्ति का अजस्त्र स्त्रोत तथा प्रेरणादायिनी शक्ति माना गया --

" पंचभूत की हो समष्टि तुम, फिर भी व्यष्टि बनी हो ।
मानव के जीवन-पथ की तुम संबल यष्टि बनी हो ।
सुर-असुरों के महायुध्द में, बनी मोहिनी बाला ।
थका जहाँ पुरुषार्थ, शक्ति को तुमने वहाँ सम्भाला ।"[१]

ये सभी नारी के मुग्धकारी आकर्षण तत्व की ओर इंगित करते हैं । इनका मानव-मन की रागात्मक चेतना से सीधा संबंध है । मानव राग जगत् में नारी सर्वत्र उच्चतम स्थान की अधिष्ठायी है । नारी पुरुष की शक्ति, ज्योति और सिध्दि की प्रतीक है । अत: उसका स्थान पुरुष के वाम पार्श्व में है । इसलिए `वामा` कहा गया है । नारी गृह क्षेत्र में पुरुष की अपेक्षा अधिक दायित्व का निर्वाह करती है, इस कारण उसका नाम `गृहिणी` भी है ।

डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है -- `पुरुष नि:संग है, स्त्री आसक्त है । पुरुष निर्द्वन्द है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी । पुरुष मुक्त है स्त्री बध्द है ।`[२] यथार्थ पुरुष योगी उदासीन और निर्जनवासी होता है । उसे निर्जन में रहना पसंद आता है । स्त्री-पुरुष को योग से संसार की ओर उन्मुख करके कर्मशील बनाता है । ` स्त्रियों को मन के खण्ड-खण्डों में विभक्त होना नहीं

---

१ 'श्री विष्णुदेव द्विवेदी' - 'कल्याण मासिक' - १०८३३
संस्करण फरवरी, १९८८

२ 'डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी' - 'बाणभट्ट की आत्मकथा' - पृ.११०
प्रकाशक --
संस्करण --

पड़ा है । वे पुस्तक के समान नीचे से ऊपर तक एक हैं, अखण्ड हैं । उसी कारण उनके आचार व्यवहार आदि इतने मनोहर और इतने संपूर्ण हैं, इसी कारण संशय के डोले में बैठे हुए मनुष्यों के लिए स्त्रियां मरण ध्रुव हैं ।`[1]

✓ / नारी मूलत: पुरुष की शिक्षिका है, तब भी, जबकि वह बच्ची होती है और तब भी जब वह वयस्क हो जाती है । नारी ही प्रेरणा की स्रोतस्विनी है । कष्ट के दुर्निवार क्षणों में नारी के स्नेहिल आंचल की छांह में पुरुष त्राण पाता है । डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में `/जब आकाश बादलों से काला पड़ जाता है । भविष्य का मार्ग घने बन में से होता है, जब हम अन्धकार में बिल्कुल अकेले होते हैं । प्रकाश की एक किरण भी नहीं दीख पड़ती और जब सब ओर कठिनाईयाँ होती हैं, तब हम अपने आपको किसी प्रेममयी नारी के हाथ में छोड देते हैं ।`[2]/ इसीसे मिलता जुलता मत कविवर पंत का भी है -- `स्त्री के बिना संसार एक अंधेरा कूप-सा है । स्त्री अलंकारों में सर्वोत्तम अलंकार है । इसके बिना कविता भी रसीली नहीं होती । यह मधुरता की एक मृदुल स्रोतस्विनी है । सौंदर्य की एक अपूर्व खान है ।`[3] ||

नारी के निंदात्मक और प्रशंसात्मक दोनो दशाओं का ही साहित्य में चित्रण हुआ । मध्यकालीन साहित्य में नारी को लेकर कवियों ने अपनी वैराग्यजन्य कुण्ठाओं को ही अधिक प्रगट किया है । रीतिकाल में नारी को विलासिता का

---

१ `सावित्री डांगा` -`मुक्तक काव्य में नारी` - पृ. ७५
प्रकाशक - देवनगर प्रकाशन, जयपुर-३
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९७७

२ `डॉ. सावित्री महपाल`-`जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र` - पृ. १५
प्रकाशक - मंगल प्रकाशन, जयपुर
संस्करण - प्रथम १९८६

३ `पंत, सुमित्रानंदन` - `पंत ग्रंथावली` - पृ. ५१
राजकमल प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड,
प्रथम संस्करण - १९७९

केन्द्र बिंदु बनाकर काव्य-रचना की गई । डॉ. उषा पांडे की मान्यता है " मध्ययुगीन कवियों व्दारा चित्रित नारी के सत् एवं असत् दोनों रुप उपलब्ध हैं । आदर्श तथा कल्पना के प्रति मोह के कारण उसकी शादि विशेषताओं को परिलक्षित कर कवि ने उसे सुंदरी की संज्ञा दी और कभी उसका दुर्बलता एवं दोषोंपर बोझाकर उसे कुनारी कहा हैं । सत् एवं असत् आदर्श एवं यथार्थ की इन्ही रेखाओंपर मध्ययुगीन कविने नारी का चित्रण किया हैं । " १

जायसी, कबीर आदि कवियों ने नारी वर्णन में ही परम प्रियतम् परमात्मा की रहस्यमयी झांकी देखी । नारी शक्ति स्वरुप को ही इन रहस्यवादी कवियों ने अलौकिक प्रेम तत्व के वर्णन का आधार बनाया । भक्त कवि तुलसी ने भी नारी को समाज में सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया । उनकी आराध्य जग-माता सीता का आदर्श चरित्र इसका प्रमाण हैं । साथ ही नारी की ही प्रेरणा स्वरुप तुलसी व्दारा ' रामचरितमानस ' का लिखा जाना भी नारी महत्ता का प्रतिपादन हैं ।

नारी की माता, पत्नी, पुत्री, बहन, भाभी, सास, दादी, आदि सभी रुपों में पुरुष के लिए सम्माननीय हैं, अत: वह महिला कहलाती हैं । नारी के इन भिन्न-भिन्न नाम रुपों के आधारपर, उसके स्वरुप की परिकल्पना की जा सकती हैं । वह प्रहर्षकारिणी मानवी, जिसमें लज्जा, रागात्मक चेतना, कमनीयता एवं मानाई, व्यवहार-दक्षता हैं, ' पूर्ण नारी ' कहलाने की अधिकारिणी हैं । नारी का यह स्वरुप कविवर प्रसाद की इन पंक्तियों में पूर्णत: साकार हो उठता हैं --

' नारी, तुम केवल श्रध्दा हो, विश्वास-रजत-नग पगतलमें ।

१ 'सावित्री डांगा' - 'आधुनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी' - पृ. २५
प्रकाशक - देवनगर प्रकाशक, जयपूर-३,
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९७७

'पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में ।'[१]

मानव-जीवन का सच्चा सौंदर्य इसी 'नारी' नाम में निहित है । स्त्री तो अपने नाम से कोमल और मंजुल है ।

नारी का किसी देश के साहित्य सृजन में बहुत बडा हाथ होता है । साहित्य और नारी का संबंध शाश्वत है । साहित्य समाज से अलग रहकर जी नहीं सकता । परिस्थितियों से विलग होकर पनप नहीं सकता और युग धर्म से बहुत दूर आकाश में उडाने भर का सहजा-नुभूतिगम्य एवं ग्राह्य नहीं हो सकता । नारी उस समय का अर्धांङ्.ग है । अत: अनिवार्यत: साहित्य को नारी से दूर एवं नहीं रखा जा सकता । भारतीय साहित्य में आदिकाल से ही नारी सम्माननीया एवं साहित्य सृजन में केन्द्रस्थ रही है । मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।'[२] कहकर उसे समाज में उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया । किन्तु यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप मध्ययुगीन भारत के पतनोन्मुखी समाज में नारी की स्थिति दयनीय हो गयी थी ।

आधुनिक काल में नवचेतना का प्रसार हुआ । कुछ धर्म-सुधारकोंने स्त्रीजीवन को दुर्दशाग्रस्त बनानेवाली कुप्रथाओं का उग्ररूप में विरोध किया । आर्य-समाज ने स्त्रियों की पुरानी रूढियों को मिटाने का सदुप्रयत्न किया । ब्रह्म समाज ने स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता के प्रश्न को उठाया । थियोसोफिकल सोसायटी प्रार्थना समाज, वेदांत समाज आदि सभी आंदोलनों का एक उद्देश्य यह भी रहा कि देश की नारी जाति का उध्दार किया जाए । स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय, केशवचंद्र सेन आदि का नाम इन प्रारंभिक धर्म-सुधारकों में विशेष उल्लेखनीय है । इन लोगों ने बाल-विवाह,

१ 'जयशंकर प्रसाद'-'कामायनी'- लज्जा सर्ग - पृ. ४५
प्रकाशक - रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद मंदिर,
छात्रसंस्करण प्रथम - १९७५

विधवा-विवाह, देव-दासी प्रथा, सती-प्रथा आदि प्रश्नोंपर विशेष ध्यान दिया । श्रीमती एनी बेसेण्ट के दिये अनेक भाषणों के परिणाम स्वरूप अनेक स्त्री-संघर्ष की स्थापना हुई । धीरे-धीरे महिलाओं ने देश की राजनीति में भी भाग लेना प्रारंभ किया । आज भारतीय नारी के समक्ष देश का विस्तृत विकासोन्मुख क्षेत्र है, जीवन के अनेक ज्वलंत प्रश्न हैं । नारी निरंतर आगे बढ रही हैं । अपने खोए व्यक्तित्व को नारी ने पुन: प्राप्त कर लिया हैं ।

प्राचीन और नवीन नारी-आदर्शों में संघर्ष और प्रतिक्रिया दिखाई । सुधार आंदोलन के व्दारा भारतीय नारी की स्थिति बहुत ही प्रभावित हुई । नारी की अवस्था उस समय अच्छी नहीं थी । नाना प्रकार की कुरीतियों के चक्र में पड कर विवशता के साथ उसे अपना जीवन यापन करना पडता था । १९वी शताब्दी के इन सुधार-आंदोलन ने नारी जाति को दुरवस्था की सीमा से निकालकर उन्मुक्ति का व्दार दिखाने की चेष्टा की । नारी धीरे-धीरे अपनी अवस्था को पहचानना शुरु किया ।

अंग्रेजों के आगमन से भी राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन उस समय हमारे देश में हो रहे थे । पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव भारतीय जन - समाज पर पड़ रहा था । जिसके कारण भारतीय प्राचीन-संस्कृति का महत्व दिनपर दिन क्षीण होता जा रहा था । नारी-जाति इस पाश्चात्य-सभ्यता से बहुत प्रभावित हो रही थी । भारत की ' नारी ' पश्चिमी-शिक्षा-दीक्षा के कारण पूर्णत: आधुनिक बन गई । प्राचीन नारी में जो गुण थे वे धीरे - धीरे नष्ट हो गये । नारी आधुनिका बनकर अपने अंदर अनेक अवगुणों को समाविष्ट कर लिया था ।

महात्मा जोतिबा फुले जैसे महान नेता ने नारी को ' स्त्री-शिक्षण ' प्रथा रूढ कि गयी । तभी स्त्री शिक्षण को बहुत विरोध था । समाज ने इस महान नेता को बहुत विरोध किया । उन्होंने स्वयं अपनी पत्नी को शिक्षण

दिया और बाद में उनकी पत्नी ने ' स्त्री-शिक्षण ' का प्रसार किया । तब नारी को समाज में स्थान प्राप्त हुआ । महात्मा जोतिबा फुले जैसे महान् नेता को लोगोंने गालियाँ दी उनके बदनपर पत्थर मारे लेकिन वे कभी भी डरे नहीं आज अपने भारतीय नारी को पुरुष के बराबर स्थान मिलना चाहिए । यही उनका उद्देश्य था और उन्होंने वह पूरा किया ।

नारी-जागृति के सबसे बड़े पोषक थे गांधीजी । उन्होंने बाल-विवाह के भयंकर परिणामों की ओर नारी जाति का ध्यान आकर्षित करके देश की असहाय विधवाओंकी स्थितिपर प्रकाश डाला । गांधीजी कहा करते थे कि स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है - वह अर्धांगिनी है, सहगामिनी है, उसको मित्र समझाना चाहिए । किंतु पुरुष स्त्री को अपना सहयोगी और मित्र समझाने कि बजाय अपने को उसका स्वामी समझाता है, शासक मानता है, यह पुरुष का अन्याय है । गाँधीजी स्त्री और पुरुषों के समानाधिकार का व्यवहार करते थे । वे चाहते थे कि महिलायें अनुचित कानूनों का विरोध करें क्योंकि बुराई बुराई की जड को ही काटकर दूर की जा सकती है ।

' स्त्री ' त्याग और सहनशीलता की अवतार है और सामाजिक जीवन में उसके आगमन का परिणाम समान का परिणाम, समान का परिशोधन और संपत्ति-संग्रह तथा असंयत आकांक्षाओं का दमन होना चाहिए । गाँधीजी नहीं चाहते थे कि भारतीय नारी पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करें । वे आधुनिकता के विरोधी थे । उनकी दृष्टि में भारतीय नारी जीवन की सफलता का चरम-बिंदू भारतीयता थी ।

गाँधीजी ने भारतीय नारी पर्दे में रहती है, यह उनको बिलकुल पसंद नहीं था । पवित्रता कुछ पर्दे की आड में रखने से नहीं पनपती, बाहर से यह लादी नहीं जा सकती । पर्दे की दीवार से स्त्री की रक्षा नहीं कि जा सकती तो उसे भीतर से भी पैदा करनी चाहिए । इसलिए स्त्री को पर्दे फाड देने में उत्साहित

किये । भारतीय नारी को बेबसी अनिश्चयता, निर्बलता, डरपोक, ऐसे में से बाहर लाने के लिए पर्दे के बाहर आनेसे चालना दी गयी । गाँधीजी ने भारतीय नारी को प्रगति का मार्ग दिखाया ।

इसप्रकार गाँधीजी ने देश की उन सामाजिक कुरीतियों की ओर दृष्टि डालो जिन्होंने नारी के जीवन को पंगु बना दिया था । उन्होंने नारी को पुरुष के समान ही अधिकार और स्वतंत्रता दिलानेका यत्न करके नारी का ध्यान देश के असहयोग आंदोलन की ओर आकर्षित किया । नारी का क्षेत्र घरतक सीमित नहीं । इसपर उन्होंने एक बार 'हरिजन' में अपने विचार व्यक्त किये थे - 'मेरे विचार में स्त्रियों की गार्हस्थिक दासता हमारी असभ्यता का अवशेष है । यही समय है कि हमारा स्त्री-समाज इस बंधन से मुक्त हो जाए, स्त्री का सारा समय घरेलू कामों में नहीं लगना चाहिए ।'[१] गाँधीजी की विचारधारा ने भारतीय नारी को विशेष प्रभावित किया । फलस्वरूप काँग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय नारी कूद पडी । सविनय अवज्ञा आंदोलन में भारतीय नारी ने सक्रिय भाग लिया और पुरुषों के साथ-साथ देश की स्वतंत्रता के लिए युध्द किया ।

१९३० ई. के आंदोलन ने भारतीय नारी की स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन किया । अभीतक भारतीय राजनीति में स्त्रियों ने भाग नहीं लिया था किंतु अब एक आकस्मित जागृति उनमें फैल गई । इस समय समस्त नेताओं के बंदीगृह में होने के कारण आंदोलन -हास की ओर अग्रसर हो रहा था, किंतु स्त्रियों ने आकर उसे संभाल लिया । इस प्रकार नारी-जागृति में गाँधीजी ने बहुत कष्ट उठाये थे ।

१ 'सावित्री डांगा' - 'आधुनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी' - पृ. ५९
प्रकाशक - देवनागर प्रकाशक, जयपूर-३
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९७७

देश की इस नवीन नारी-जागृति ने हिंदी साहित्यकारों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया । यह देश अहिंसात्मक स्वाधीनता संग्राम था । नर-नारी,वृध्दा-युवा,बालक-बालिका ने इस युध्द में अपनी आहुति दी ।

ब्रिटिशों के आगमन के पूर्व भारत की सामाजिक और स्थिति अच्छी नहीं थी । इसलिए नारी को उतना स्थान नहीं मिला । वह पुरुषों के साथ काम करने लगी । भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ के समाज की नांव देहातों पर खडी हैं और आज भी देहातों का महत्व कायम हैं । इसलिए किसानों की स्त्रियाँ भी घरेलू उद्योग धन्धे करती थी । सूत कताई के साथ-साथ वे अपने पतियों के साथ खेती में भी सहयोग करती थी । भारतीय-विधान संहिता के नियमकों में प्रसिध्द महर्षि मनु ने घोषणा की थी कि ` जहाँ नारियों की पूजा होती हैं, वहाँ देवता रमण करते हैं । वैदिक वाङ्मय में कहा गया हैं कि स्त्री ही घर हैं । उन्नीसवी शताब्दी के समाज सुधारकों ने देश की पराधीनता की बेडी से मुक्त करने के लिये नारी - स्वतंत्रता को आवश्यक ठहराया ।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में नारी के अनेक रुपों का अनेक विध चित्रण हुआ हैं । उनमें नारी के अनेक रुप हैं - देवी, माता, पत्नी,कन्या, प्रेयसी, ।

(१) <u>देवी</u> --

वैदिक युगसे ही भारतीयों ने नारी को देवी मानकर उसके प्रति श्रध्दा अर्पित की हैं । इस काल में नारी की प्रतिष्ठा का सर्वोच्च काल माना जाता था । नारी को देवी के रुप में कल्पना करने के कारण ही आर्यों ने अनेक देवियों की प्रतिष्ठा की । वेदों में आदिति, उषा, इन्द्राणी, इला,दिति, सीता, सूर्या, वाक , सरस्वती,आदि देवियों का अनेकत्र स्तवन हुआ हैं । पुराण-युग तक आते-आते देवी रुपा नारी अलौकिक विभूति का

समाहार मुख्यत: सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, इन तीन रूपों में हो गया । इनके अतिरिक्त विभिन्न प्राकृतिक विभूतियों में भी किसी न किसी देवी-रूप का आरोपण करके उन्हें विभिन्न नाम दिये जाते रहे, यथा, उषा, संध्या, ज्योत्स्ना, दिपा, निशा आदि । परंतु प्रधानता उन्ही पूर्वोक्त तीनों रूपों को रही है । भारतीय समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का इन तीनों देवी-रूपों से ऐसा लौकिक पारलौकिक रागात्मक सम्बन्ध जुड गया कि ये जीवन का नैसर्गिक अंग-सा बन गये । ब्राह्मण वर्ण के लिए सरस्वती, क्षत्रिय वर्ण के लिए दुर्गा और वैश्य वर्ण के लिए लक्ष्मी की आराधना उसके जीवन कर्म का मूल आधार बन गई ।

मध्ययुग में भारतीय जीवन की विशृंखलता और अगति के कारण यद्यपि समाज में नारी की स्थिति अत्यंत हीन हो गई थी और उनके व्यक्तित्वपर नाना प्रकार के उचित-अनुचित प्रतिबन्ध लग गये थे, फिर भी नारी के प्रति श्रध्दा समाप्त नहीं हुई थी, और असाधारण प्रतिभा से मंडित नारी सहज ही देवी की प्रतिष्ठा पा लेती थी । नारी के दोषों और बंधनों का मूल स्रोत उसके यौन-सम्बधों को ही माना जाता था । इसलिए साधारण कन्या को देवी-तुल्य मानने का संस्कार, हमारे समाज में आज भी विद्यमान है और विशेष पर्वों में कन्या की पूजा का विधान भी है ।

पुरान-काल में उक्त देवी रूपों के अतिरिक्त ' शिवपत्नी-पार्वती ' के नाम से एक अन्य देवी रूप की भी प्रतिष्ठा हुई । इसे आदर्श पत्नी और सती नारी के रूप में विशेष ख्याति, मिली । इसके अन्य नाम सती, गौरी आदि भी प्रसिध्द हैं । परवर्ती संस्कृत साहित्य में सरस्वती की वंदना वागीश्वरी देवी के रूप में सर्वत्र प्राप्त है । पार्वती-वन्दना की परम्परा भी दृष्टिगोचर होती है । सीता व्दारा अभीष्ट वर प्राप्ति के लिए गौरी-पूजा का प्रसंग सर्वविदित है ।

वैदिक , पौराणिक और संस्कृत काव्यों में उल्लिखित ऋषि-नारियों, गुरु-पत्नियों एवं अन्य संपूज्या नारियों के नाम भी देवी-तुल्य गृहीत हैं। लोपामुद्रा, गार्गी, अनसूया, मैत्रेयी, अरुन्धती, मातंगी आदि नाम इस रूप के अर्थवाहक हैं। इनमें सारी विधाओं में निष्णात और वेदमन्त्रों की साक्षात्कार करनेवाली नारियों के नाम गृहीत हैं।

आधुनिक युगमें संस्कार और यथार्थ की गहराई संभवत: दूर हो गई हैं। अब नारी को देवी न मानकर मानवी माना जाने लगा है मानवी के रूप में उसकी सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने उसको पुरुष की समकक्षी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा हैं।

(२) माता --

नारी के विभिन्न रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मातृत्व हैं। इस रूप को सबसे अधिक महत और गौरवशाली माना जाता हैं। वेदों में माता को पृथ्वी - स्वरूपा कहा गया हैं। पृथ्वी के समान ही वह संतान को धारण करती है, उसका लालन-पालन करती हैं। इसलिए माता के ऋण से उऋण होना असंभव माना गया हैं। "स्त्री के विकास की चरमसीमा उसके मातृत्व में ही सकती हैं।"[१] मातृत्व नारी जीवन की चरम सफलता हैं। "नारी जीवन की सफलता मातृत्व में ही चरितार्थ होती हैं। इस बात को उस समय के सभी मनीषी मानते थे। माँ को पृथ्वी स्वरूपा और पिता से भी बड़ी माना हैं। माता के स्वभाव में एक ओर धैर्य त्याग, ममता, स्नेह का परम उत्कर्ष देखते थे तो दूसरी ओर उसके पुत्रवती होने को भी अनिवार्य मानते थे।"[२]

---

१ 'महादेवी वर्मा' - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. ८३
प्रकाशक - भारती भंडार, सप्तम संस्करण - १९४२

२ 'बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण' - पृ. २९४
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन,
संस्करण - १९६८

नारी के जीवन की सच्ची सार्थकता और पूर्णता तभी होती है, जब वह माँ बनती है, संतान को जन्म देना उसका लालन पालन करना और आजीवन उसकी उन्नति में योग देना मातृत्व का सही आदर्श है, यही उसका शाश्वत रूप है।

भारतीय साहित्य में नारी की उदात्तता का चरम निदर्शन उसके मातृ-रूपमें होता है। माता-पिता के समान में माता शब्द का स्थान ही प्रथम है।` वाल्मीकी रामायण के अनुसार नारीत्व की चरम परिणति मातृत्व रूपमें होती है। मनुष्य के चरित्र-निर्माण की सूत्रधारिणी माता है, पिता नहीं।`[1] माता को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बतानेवाली उक्ति "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" (माता तथा मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।) निसंदेह मातृरूपा नारी के प्रति भारतीय मनीषा की अपार श्रध्दा की प्रतीक है।` भारतीय जन जीवन में मातृ-रूपा नारी की सर्वोच्च प्रतिष्ठा इसीसे स्पष्ट है कि यहाँ का हर आस्तिक मनुष्य देवाधिदेव को अपना सर्वस्व मानते हुए सर्व प्रथम उसकी वंदना माता रूप में करता है।`

"त्वमेव माताच पिता त्वमें त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विधा द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम देव देव।"[2]

निसंदेह मातृरूपा, नारी के प्रति भारतीय मनीषा की अपार श्रध्दा की प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण में माता को सबसे पहला गुरु माना गया है।`[3]

१ 'डॉ. सुतदेव हंस'-'उपन्यासकार चतुरसेन - शास्त्री के नारी पात्र' - पृ. ८
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण - १९७४

२ 'गोरखपुर'-'श्रीमद्भगवद्गीता'- मुद्रक और प्रकाशक - घनश्याम - ...
जालान, संवत् २००५ तक

3 'डॉ. सुतदेव हंस'-'आ. चतुरसेन के उपन्यासों में नारी चित्रण' - पृ. ७
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली-६
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९७४

नारी के मातृरूप को अत्यंत सम्मान मिला है तथा उसकी व्यंजना विविध प्रकार से की गई है। नारी को केवल माता जननी नहीं, प्रेरक शक्ति के रूप में भी अंकित किया है। नारी हृदय में सुप्त माँ विवाह के पश्चात शीघ्र ही जगत हो उठती है और गर्भकाल की तथा प्रसव की पीड़ा को सहने के लिए तत्पर होकर एक नवजात शिशु से अपनी गोद भरकर जीवन को सार्थक बनाना चाहती है। मातृत्व के अभाव में नारी-जीवन असंतोष एवं मानसिक विकृतियों से भर जाता है। कुंवारी नारी भी इस प्रकृतिदत्त अनुभूति का मर्म जानती है। इसलिए गोद भर जानेपर एक भिखारिन भी स्वयं को वंध्या महारानी से हीन समझाती। संभवतः इसी एक सुख के कारण वह जीवन के सारे विष-घूंट हँसते-हँसते पी जाती है।

'वसिष्ठ धर्मसूत्र' और 'मनुस्मृति' के अनुसार उपाध्याय से आचार्य दस गुणा प्रतिष्ठित है, आचार्य से पिता सौ गुणा प्रतिष्ठित है किंतु पिता से भी माता सहस्त्र गुणा अधिक प्रतिष्ठित है।

'उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्त्र तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।।' १

'वसिष्ठ धर्मसूत्र' का कथन है कि पतित पिता से संबंध-विच्छेद किया जा सकता है किंतु माता से नही।

'पतितः पिता परित्याज्यः माता तु पुत्रे न पतति ।'
'वसिष्ठ धर्मसूत्र ।

---

१ 'डॉ. सुखदेव हंस' - 'आ. चतुरसेन के उपन्यासों में नारी चित्रण' - पृ.७
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण - १९७४

जीवनभर की साधना और तपस्या से माता अपने वात्सल्य को चरितार्थ करती है। एक शब्द में वह अपने समस्त व्यक्तित्व को अपनी संतान में लयकर देती है। वैसा ही आदर्श रूप अपनी संतान के प्रति उसका हित-चिन्ता का भी। संतान चाहे अयोग्य हो चाहे कर्तव्यच्युत हो, चाहे समाज की आँखों में पतित और तिरस्कृत हो माँ का वात्सल्य भरा अंचल सदा उसपर छाया रहता है। माता का यह अक्षय वात्सल्य कभी नहीं घटता, कभी नहीं सूखता। कठिन-से-कठिन परिस्थिति में और बड़े-से-बड़े विरोध में भी माँ अपना वात्सल्य नहीं भूलती। वह संसार के बाकी सारे सुखों को तिलांजलि दे सकती है, समाज का और परिवार का बड़े-से - बड़ा अत्याचार सह सकती है। पर अपनी संतान की हानि नहीं सह सकती। संतान का सुख उसके जीवन में सबसे बड़ा मूल्य होता है।

प्राचीन युग में नारी जीवन की सफलता ही पुत्रवती होने में मानी जाता थी और पत्नी भी पुत्रवती होकर आदर प्राप्त करती थी। सच्चा मातृत्व विशाल व्यापक तत्व है, जो सीमातीत होता है। सच्चे मातृत्व में अंधा मोह नहीं होता जो केवल स्वार्थ देखता हो। उसमें तो विशुध्द प्रेम होता है और प्रेम का पादप त्याग की धरापर ही पनप सकता है। माता यह भी चाहती है कि उसकी संतान यशस्वी बने। उसके दूध को अमृत सिध्द करे, इसी में उसके मातृत्व की सफलता है। इसी कारण एक अशिक्षित माँ भी अपनी संतान का नाम एवं सम्मान देखने को लालायित रहती है। उसे अपनी संतान की प्रशंसा सुनकर जो अपरिमित प्रसन्नता होती है, उतनी कदाचित किसी को भी नहीं, क्योंकि उसी में उसका " स्व " निहित रहता है। इसके अतिरिक्त सच्चा मातृत्व केवल अपनी संतान का ही नहीं, अपितु धरतीपर विचरनेवाले प्रत्येक बच्चे का क्रंदन सुनकर द्रवित हो जाता है। उसकी ममता एवं करुणा की सीमाएँ इतनी व्यापक होती है, कि उसमें समस्त विश्व समा जाता है।

माँ वात्सल्य भावना से बच्चे का हित देखना चाहती है, नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है । सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है । मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है । एक शब्द में उसे लय कहूँगा -- जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी [1]

/माता का हृदय पुत्र के बारेमें जितना कोमल है उतना कठोर भी होता है । अपने देश की दुर्दशा के निवारणार्थ अपने प्राण प्यारे पुत्र को भी निछावर करने को प्रस्तुत हो जाती है । हमारे इतिहास के पृष्ठ माताओं के महान त्याग से आरंजित हैं । जिस माता ने अपने पुत्र के प्रत्येक सुख एवं सुविधा के लिये अपना जीवन निछावर कर दिया, उस माता के आदेश की उपेक्षा भी कैसे हो सकती है ? माता के रूप में नारी ही देश के शील की प्रतीक है । लज्जा एवं सुशीलता की प्रतिमूर्ति माता ही पथ-भ्रष्ट पुत्रों का सच्चा-प्रदर्शन कर सकती है ।

सूर का काव्य मातृ हृदय की भावाभिव्यंजना की दृष्टि से हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है, जिसमें यशोदा का मातृ हृदय ही मुखरित हुआ है । किंतु आधुनिक काव्य में या राष्ट्र साहित्य में प्रत्येक माता यशोदा है और प्रत्येक बालक कृष्ण ही दिखाई देता है । अत: इन कृतियों में सामान्य नारी के मातृत्व को अभिव्यक्ति मिली है । मातृ हृदय में शिशु के प्रति अगणित भावनाएँ उमड़ती रहती हैं । माँ का हृदय भावुक होता है । वह अपने बच्चे पर सदैव प्यार भरी दृष्टिसे ही देखती है । माँ कुरूप, गंजी एवं कानी बच्ची को भी रानी कहकर पुकारती है और उसपर प्यार करती है ।

विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की माता-रूप में स्तुति की परम्परा इसी तथ्य की परिचायिका है । यहाँ पवित्र नदियों को आज भी जनसाधारण

---

१ 'प्रेमचंद'-'गोदान' - पृ. २५१
प्रकाशक - भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-२
संस्मरण - प्रथम संस्मरण - १९८७

' गंगा मैया यमुना मैया, सरस्वतीमैया आदि मातृ-संबोधनों से अभिहित करता है । इस मान्यता का आदिस्रोत भी वैदिक वाड्.मय है । ऋग्वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक तत्वों और देवों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने में उन्हें माता के रूप में कल्पित किया है ।' [१]

माँ अपने बच्चे का भविष्य भी देखती है । उस भविष्य के बारेमें वह सोच-विचार करती है । अपनी संतान के भविष्य का ध्यान रखते हुए ही माँ-बाप यह चेष्टा करते है कि उनकी बेटी का विवाह संबंध ऐसे परिवार में हो जहाँ वह प्रसन्नतापूर्वक सुख मे रह सके । यदि किसी कारण वश ऐसा नहीं होता तो जितना दु:ख उनकी बेटी को होता है उससे भी अधिक दु:ख माँ को होता है ।

माता अपनी वात्सल्य भावना से ही प्रेरित होकर संतान की प्रगति और उन्नति के उपाय खोजती रहती है । ' माता-पिता को बाध्य होना चाहिए कि वे अपनी कन्याओं को अपनी अपनी रुचि तथा शक्ति के अनुसार कला, व्यवसाय आदि की ऐसी शिक्षा-पाने दें, जिससे उनकी शक्तियाँ भी विकसित हो सके और वे इच्छा तथा आवश्यकतानुसार अन्य क्षेत्रों में काम भी कर सके ।' [२] उसकी सदा यही चेष्टा रहती है कि उसकी संतान समर्थ और सच्चरित्र बने, अपने जीवन में यश और सफलता अर्जित करे । इसलिए वह बचपन से ही अपनी संतान को कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान देती है, उसके आचार-व्यवहार को देखभाल करती है, और अपनी सामर्थ्य भर उसको गलत रास्ते पर नहीं जाने देती । इसके लिए यदि उसे कष्ट उठाने पडे अथवा आत्म-त्याग भी करना पडे तो वह सहर्ष प्रस्तुत करती है ।

---

१ 'डॉ. सुखदेव हंस' - 'उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र' - पृ. ८
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन - दिल्ली-६
प्रथम संस्करण - १९७४

२ 'महादेवी वर्मा' - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. ८५
संस्करण - १९४२
प्रकाशन भारतीय भंडार.

माता अपने संतान का संरक्षण भी करती हैं। यद्यपि माता अपनी संतान को बचपन से ही ऐसी शिक्षा देती हैं कि वह वयस्क होकर अपने जीवन को स्वयं सफल बना सके फिर भी वह आजीवन उसके सुख - दुख का ध्यान रखती हैं। यदि संतान की भूल से, चारित्रिक त्रुटि से अथवा परिस्थितियों के योग से संतान को कभी विपत्ति झेलनी पड़ती हैं तो चाहे शेष संसार उससे रूठ जाय, पर माँ संतान को अवश्य ही शरण और संरक्षण देती हैं।

नारी के मातृत्व रूप का श्रेष्ठतम रूप वह हैं जब वह कर्तव्य के समक्ष अपनी वात्सल्यभावना को तिलांजली दे देती हैं। और एक ओर वह वात्सल्य भावना से प्रेरित होकर संतान की प्रगति और उन्नति भी खोजती हैं।

मातृत्व के प्रांगण में पुत्री की बिदाई एक ऐसी विड़म्बना हैं कि जो न रोने देती हैं न हँसने देती हैं। एक ओर वह कर्तव्य की पूर्ति बनकर आती हैं, तो दूसरी ओर वियोग की व्यथा लेकर। अपने ही व्यक्ति को अपने पास न रखकर दूसरे को सदा के लिए सौंप देने का यह सामाजिक विधान जितना विचित्र-सा हैं उतना आवश्यक भी। अपने तन-मन के अभिन्न अंश को अन्य के हाथों में सौंपते समय उसके लिए स्नेहपूर्ण सुरक्षा की माँग करना भी कितना स्वाभाविक हैं। बिदाई की इस करुणार्द्र बेला में पुत्री की माता, पुत्री की सास के समक्ष अपना ममता भरा मन और अपनी विवशता का आँचल पसार कर उसके लिए सुख-सुविधा की याचना करती हैं।

इस प्रकार मातृहृदय को विविध पक्षों और जीवन में आनेवाले सुखद प्रसंग माँ के हृदय से स्पष्ट होते हैं। शिशु प्राप्ति की सहज कामना से लेकर शिशु का लालन-पालन,झुलाना-सुलाना माता के मन की रीझ खीझ वियोग, पुत्री-बिदाई,आदि प्रसंग में उमड़नेवाली मातृ हृदय की सूक्ष्म-सकल भावनानु - भूतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। माता को शक्ति स्वरूपा मानकर उसकी गरिमा

का गुणगान अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में हुआ है।

(३) पत्नी --

वैदिक साहित्य में पत्नी को पति के घर में सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इसका प्रमाण है ऋग्वेद का यह कथन है कि 'पत्नी ही घर है।'[१] जायेदस्तं मघवन त्सेदु योनि स्तदित् त्वा युक्ता हरयो वदन्तु। " अथर्ववेद मे पत्नी को 'रथ की धुरी के समान गृहस्थ का मूलाधार कहा गया है। इस संबंध में अथर्ववेद की यह उक्ति उल्लेखनीय है। --' हे पत्नि। तू दृढ रूप से स्थिर रह। तू विराट है। हे सरस्वति। तू इस पतिगृह में विष्णु की तरह है।

प्रकृति ने नारी को पुरुष के पूरक रूप में बनाया है। एक के बिना दूसरे का व्यक्तित्व अपूर्ण और अधूरा ही रहता है। विवाह इसी प्राकृतिक विधानका सामाजिक संस्कार है। पत्नी बनकर नारी पुरुष की सहधर्मिणी और अर्द्धांगिनी बनती है, और अपने जीवन की सार्थकता पाती है। पति-पत्नी दोनों के सहयोग से दाम्पत जीवन का संचालन होता है।

ऋग्वेद में पत्नी को सारे परिवार के लिए कल्याणकारिणी कहा गया है। वेदोंका स्पष्ट अभिमत है कि 'जिस घर में पत्नी नहीं, उस घर में दिन का निवास नहीं।' पत्नी सारे घर की नियंत्रिका और व्यवस्थापिका है। जिस प्रकार समुद्र वर्षा करके नदियोंपर साम्राज्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार पत्नी पति के घर जाकर वहाँ की सम्राज्ञी बनाती है। इसका अभिप्राय यही है कि जैसे समुद्र नदियोंका राजा है, और नदियाँ संपूर्ण जल-संपत्ति उसे समर्पित करती है, वैसे पत्नी गृह स्वामिनी है और परिवारके अन्य सदस्यों द्वारा अर्जित संपत्ति उसी को समर्पित की जानी चाहिए।

---

१ 'डॉ. सतदेव हंस' - 'आ. चतुरसेन के उपन्यासोंमें नारी चित्रण' - पृ.९
प्रकाशक - भारतीय ग्रन्थ निकेतन
प्रथम संस्करण - १९७४

विवाह होने के बाद पति के प्रति अनन्य प्रेम और विश्वास नारी रखती है। नारी एक बार उसे वरण कर लेती है, आजीवन उसके प्रति समर्पित रहती है। विषम-से विषम परिस्थितियोंका जाल भी उसे अपने प्रेम से नहीं डिगा पाता। इसी प्रेम के बलपर पतिपर अखण्ड विश्वास रखती है। किसी कारण वश पति उसे छोड़कर चला भी जाय अथवा किसी अन्य नारी की ओर आकर्षित हो जाय, तो उसके प्रेम में कोई कमी नहीं आती। वह उसके लौटकर आने की प्रतिक्षा में ही अपना सारा जीवन काट देती है। यही नहीं वह पति के विमुखता के लिए भी अपने भाग्य या परिस्थितियोंकोही दोषी समझती है, और पति के पुन: उसकी ओर झुकने पर तुरन्त अपने प्रेम और समर्पण से उसे दु:खान्त प्रकरण को मिथ्या सिध्द कर देती है।

मानव सभ्यता के आदि कालसे पत्नी के धर्म और मर्यादा का महत्व स्वीकार किया जाता है। जिस प्रकार पुरुषों के लिए एक पत्नी व्रत को आवश्यकता पर जोर दिया गया है, उसी प्रकार पतिव्रत को पत्नी का परम धर्म माना गया है। वेद, पुराण और शास्त्रों में पत्नी के पातिव्रत का नानाप्रकार से बखान किया गया है। अपनी अविचल पति-भक्ति के ही कारण सीता, सावित्री और पार्वती जैसी सती नारियाँ हमारे समाज में श्रध्दा और सम्मान पाती रही है।

'मनुस्मृति' में कहा गया है --

'पितरों का और हमारा स्वर्ग सब पत्नी के अधीन है।'[१] मनु के कथानुसार पत्नी पूज्या है। उसी की प्रसन्नता में परिवार की प्रसन्नता निहित है और उसके दु:खी होने की स्थिति होती है। पति को परमेश्वर माननेवाली भारतीय आदर्श नारी का रूप दिखाई देता है। जैसे रामायण की सीता पति के साथ चौदह वर्ष वनवास भुगतनेवाली नारी आदर्श नारी है। याने पति के साथ सुख की

---

१ 'डॉ. सुखदेव हंस' - 'उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्रीके नारी पात्र' - पृ.९
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ प्रकाशक, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण - १९७४

सहभागिनी और दु:ख के साथ दु:खानी होनेवाली दिखाई देती हैं । राजमहल छोडकर कौनसी भी नारी वनवास में जाना पसंद नहीं करेगी लेकिन यहाँ पति के साथ होनेवाली श्रध्दा, प्यार, दिखाई देता हैं यह आदर्श हैं ।

तन-मन-वचन से पति - परायणता पत्नी का आदर्श रुप हैं । वह पति की शक्ति हैं, गृहिणी हैं, अनुगता हैं । अपनी योग्यता कुशलता और सेवा से दाम्पत्य जीवन को निरन्तर सुचारु रुप से चलाना पत्नी का धर्म हैं । पत्नी का यह धर्म परिवार की नैतिकता और शांति का मेरुदण्ड हैं । पति चाहे एक बार भूलकर जाये या भटक जाये, पर पत्नी,अपने कर्तव्य से कभी च्युत नहीं होती । यही उसका सनातन आदर्श हैं, यही उसका शाश्वत रुप हैं ।

स्मृतिकारों ने पत्नी के कतिपय अधिकारों का निर्देश किया हैं । उनके अनुसार कोई पति अकारण अपनी पत्नी का परित्याग नहीं कर सकता । ऐसा करने पर उसे कठोर प्रायश्चित करना पडेगा । आपस्तम्ब धर्मसूत्र का विधान यह हैं कि वह गर्दभ का चर्म धारण कर छ: मासतक प्रतिदिन सात घरोंसे यह कहकर भिक्षा माँगे उस व्यक्ति को भिक्षा दो जिसने अपनी पत्नी का परित्याग किया हैं ।` स्मृतियों में एकसे अधिक पत्नीधारी पति को निन्दनीय माना गया हैं ।`[१]

नारी पति के सुख-दु:ख, आशा-निराशा, आचार-विचार और महत्वाकांक्षाओं को अपना कर ही सहधर्मिणी और अर्धांगिनी बनती हैं । नारी में परिस्थितियों के अनुकूल आत्म-परिवर्तन की एक विलक्षण शक्ति पायी जाती हैं । परिस्थितियों के अनुसार अपने बाह्य-जीवन को ढाल लेने की जितनी सहज प्रवृत्ति नारी में हैं, अपने स्वभावगत गुण न छोडने की आन्तरिक प्रेरणा उससे कम नहीं । इसीसे भारतीय नारी पुरुषो से अधिक सतर्कताके साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकी हैं । पुरुषों के समान अपनी व्यथा भूलने के लिए वह

---

१ डॉ. सुखदेव हंस - आ. चतुरसेन के उपन्यासों में नारी चित्रण - पृ. १०
प्रकाशन - भारतीय ग्रंथ निकेतन,
प्रथम संस्करण - १९७४

कादम्बिनी नहीं मांगती, उल्लास के स्पन्दन के लिए लालसा का ताण्डव नहीं चाहती क्योंकि दुःख को वह जीवन की शक्ति-परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है।'[१]

पत्नी-रूपा नारी की यह प्रतिष्ठा रामायण, महाभारत एवं परवर्ती संस्कृत साहित्य में यथावत् स्थापित रही है। आदि महाकाव्य रामायण की रचना पत्नी-रूपा नारी की गौरव-स्थापना के लिए ही हुई है। 'महाभारतकार ने 'भार्या - रक्षण' में असमर्थ व्यक्ति को नरकगामी कहकर पत्नी रूपा नारी का महत्व प्रदर्शित किया है।'[२] प्राचीन साहित्य में पत्नीरूपा नारी की अधिकार प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसके कर्तव्य की ओर भी संकेत किया गया है। इसमें सर्वाधिक प्रमुखता पतिसेवा को दी गई है। अर्थववेद के अनुसार 'पति की यश: सिध्दि एवं सफल मनोरथों की पूर्ति में यथाशक्ति सहयोग देना पत्नी का एकमात्र कर्तव्य है।'[3]

अपने अनन्य प्रेम के और निष्ठा के कारण ही पत्नी सदा अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को अपने मन में स्थान नहीं देती। परिस्थितिवश यदि उसका तन पराजित हो भी जाय तो भी उसका मन सदैव पति का ही स्मरण करता है। पत्नी के इस पतिव्रत्य का एक सफल उदाहरण 'सुनीता' में मिलता है। 'सुनीता एक सुशिक्षित गृहिणी है। वह पूर्णरूपेण पति श्रीकान्त के प्रति समर्पित है। श्रीकांत जब अपने मित्र हरिप्रसन्न को घर छोड़कर स्वयं लाहौर

---

१ 'महादेवी वर्मा' - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. २५-२६
प्रकाशक - भारती भंडार, सप्तम संस्करण - १९४२

२ 'डॉ. सूतदेव हंस' - आ. चतुरसेन के उपन्यासों में नारी पात्र' - पृ. ११
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन -
संस्करण - प्रथम १९७४

३ 'डॉ. सूतदेव हंस' - 'उपन्यासकार चतुरसेन के नारीपात्र' - पृ. ११
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन,
संस्करण प्रथम - १९७४

चला जाता है और सुनीता को आदेश देता है कि वह हर प्रकार से हरिप्रसन्न का ध्यान रखे तब सुनीता के सामने विकट संकट उपस्थित हो जाता है । फिर जब वह लाहौर से उसको पत्र द्वारा पुन: यह आदेश देता है कि वह कुछ दिनों के लिये अपने पति को मन से अलग कर दे तब तो वह और भी विक्षुब्ध हो उठता है । ' बताओ इस तुम्हारी चिठ्ठी का क्या यही आशय मैं पाऊं कि मुझे स्वयं कुछ नहीं रहता है, नियति के बहाव में बहते ही चलना है । धर्म - अधर्म बिसार देना है ।'[१] इस प्रकार पति की आज्ञा से वह हरिप्रसन्न के सम्मुख निर्वस्त्र तक हो जाती है ।

विवाह होते ही नारी के जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है । वह अपने माता-पिता दूर पति के साथ रहने लगती है । मायके का जीवन और वातावरण त्यागकर अब उसे पति की जीवन प्रणाली और ससुराल का वातावरण अपनाना पडता है । इस प्रकार पति का जीवन और उसका जीवन अभिन्न हो जाता है । पति के सुख-दु:ख ,आशा-निराशा,आचार-विचार और महत्वकांक्षाओं को अपना कर ही वह सहधर्मिणी और अर्धांगिनी बनती है । उसका अनन्य प्रेम और पतिव्रत इसी अभिन्नता की कसौटी पर कसा जाता है । इसी अभिन्नता के कारण वह पति से न कोई दुराव रखती है, न पति को ही रखने देता है ।

' अपनी सहज प्रवृत्ति और व्यक्तित्व को पति के जीवन और व्यक्तित्व से अभिन्न मानने के कारण ही पत्नी पति के दोषों के प्रति सहिष्णु रहती है ।' पति यदि दुराचारी,क्रोधी अथवा विश्वासघाती भी हो तो भी वह उसे बुराभला कहने की बजाय अपने आचरण को तदनुकूल बनाने की चेष्टा करती है । परिवार

१ ' जैनेन्द्र ' - ' सुनीता ' - पृ. १४४

छात्र संस्करण - १९८० - पूर्वोदय प्रकाशक

२ ' प्रेमचंद ' - ' गोदान ' - पृ. ३७२

प्रकाशक - भारती भाषा प्रकाशन - दिल्ली-२

संस्करण - प्रथम संस्करण - १९८०

और समाज यदि पत्नी की निन्दा करते हैं तो सच्ची होनेपर भी वह अपने पति की निन्दा नहीं सुनना चाहती । उसकी सदैव यही धारणा रहती है कि पति चाहे जैसा भी हो उसकी अनुगामिनी बने रहना ही उसका कर्तव्य है ।

प्राचीन साहित्य में पत्नीरुपा नारी की अधिकार प्रतिष्ठा के साथ साथ उसके कर्तव्य की ओर भी संकेत किया गया है । इसमें सर्वाधिक प्रमुखता पति सेवा को दी गई है । ' अथर्ववेद के अनुसार पति की यश:सिध्दि एवं सफल मनोरथों की पूर्ति में यथाशक्ति सहयोग देना पत्नी का एकमात्र कर्तव्य है ।'[१]

यदि स्वभाववश अथवा विषम परिस्थितियों के कारण पति किसी ऐसे मार्ग का अनुसरण करने लगता है जिससे उसकी प्रतिष्ठा, मर्यादा और सुख के नष्ट होने की संभावना है तो पत्नी प्राण-पण से यह प्रयत्न करती है कि वह पति को इस मार्ग से विरत कर सके ।

(४) प्रेमिका --

' पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्म-समर्पण से ।' स्त्री-पुरुष का आकर्षण एक प्राकृतिक सत्य है । इसी आकर्षण पर सृष्टि का विकास अवलम्बित है । इसलिए आदिकाल से ही नर नारी के संबंधों में प्रेमतत्वों को अनिवार्य माना गया है ।'[२] विवाह की प्रथा प्रचलित होने के पूर्व पुरुष और नारी मिलन उनके पारस्परिक प्रेम पर ही निर्भर था । बाद में समाज की नैतिक प्रगति के फलस्वरुप जब विवाह-प्रथा

---

१ ' डॉ.एलदेव हंस ' - 'आ.चतुरसेन के उपन्यासोंमें नारी ' - पात्र - पृ.११
भारतीय ग्रन्थ प्रकाशक - प्रथम संस्करण - १९७४

२ ' डॉ.अग्रवाल बिंदु ' - ' हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण ' - पृ.३२७
राधाकृष्ण प्रकाशन,
संस्करण - १९६८

का आरंभ और विकास हुआ, तब भी विवाह के लिए दोनों पक्षों में प्रेम के अस्तित्व को आवश्यक माना गया ।

प्राचीन काल से हमारे समाज की यह मान्यता रही है कि नारी एक बार जिस पुरुष से प्रेम करती है जीवनभर उसीकी होकर रहती है । उसके जीवन की सार्थकता ही इस मिलन में है । यदि परिस्थितिवश प्रेमी से उसका मिलन नहीं हो पाता है तो वह अपने जीवन को निरर्थक समझकर प्राण तक त्याग कर देती है ।` भारतीय प्रेमिका का आदर्श पार्वती और सावित्री है जो कठिन से कठिन बाधाओं को अपने प्रेम के बल से जीत कर अपने प्रेमी का संयोग प्राप्त करती है ।

ऋग्वैदिक काल में प्रचलित` समन ' आदि प्रथाओं से विदित होता कि सभ्यता के जन्म काल में युवक युवतियों के स्वतन्त्रतापूर्वक मिलनेपर कोई प्रतिबन्ध न था । वे समान रूप से आमोद-प्रमोद और उत्सवों में भाग लेते थे और अपने मनोनुकूल जीवन संगी का चुनाव करते थे । तत्पश्चात अपने अभिभावकों की अनुमति पाकर विवाह बंधन में बँधते थे ।

हिंदी उपन्यासकारों ने भी नारी के इस अनन्य प्रेम की पवित्रता और अलौकिकता के प्रति श्रध्दा अर्पित की है । वह मानते हैं नारी एक बार हृदय देती है एक ही के चरणों में श्रध्दा अर्पित करती है । यदि ऐसी नारी का विवाह उसके प्रेमी के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति से किया जाता है तो वह उसके साथ अन्याय है ।` जो विवाह प्रेम में सहायक नहीं, बाधक होता है, उस विवाह की अपेक्षा तो अविवाहित रहकर प्रेम का निर्वाह करते रहना ही श्रेयस्कर है ।`[१] उपन्यासकार उस नारी की प्रेम-जनित वेदना को श्रध्दा अर्पित करता है जिसे परिस्थितिवश विवश होकर अन्य पुरुष से विवाह के लिये बाध्य होना पड़ता

---

१ 'प्रेमचंद'-'गोदान'- पृ.१८५
प्रकाशक - भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-२
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९८७

है । साथ ही जिस नारी का प्रेम एकनिष्ठ एवं अटल नहीं है उसकी तीव्र भर्त्सना भी की है । जो नारी प्रेम के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों का सामना करती हुई अपने प्रिय के प्रति सदैव अविचल भाव से अनुरक्त रहती है वही श्रध्दा के योग्य है, वही प्रेमिका का शाश्वत रूप है । सामाजिक रूढियों एवं पारिवारिक बंधनों के कारण नारी या प्रेमियों का विवाह अन्य व्यक्ति से कर दिया जाता है, फलस्वरूप उनका दाम्पत्य जीवन दु:खमय हो जाता है ।

ऐसे प्रेमिका का जीवन दु:खी हो या सुखी इसकी चिंता समाज नहीं करता लेकिन दु:ख भुगतने वालों को ही भरना पडता है । समाज के खातिर त्यागपत्र की मृणाल का भी विवाह ऐसा ही हुआ है । समाज क्या कहेगा इसका असर प्यार करनेवाले को नहीं होता तो उनके परिवार को होता है । भाई - और भावज की प्रतिष्ठा के कारण एक बूढे के साथ मृणाल को विवाह करना पडा । और आगेचलकर पतिमहाशय को सत्य बतादेती है,तो उसका परित्याग कर देते हैं । नारी जब प्रेमिका बनती है तो उसके मनमें अनेक आदर्श या भाव रहते हैं वह आदर्श और भाव पूर्ण नहीं हो तो वह प्यार कभी भी सफल नहीं बनता । प्रेमिका नि:स्वार्थ प्रेमी की साकार होनी चाहिए । ऐसी प्रेमिका 'परख' में हमे दिखाई देती है ।

प्राचीन काल से हमारे समाज की यह मान्यता रही है कि नारी एक बार जिससे प्रेम करती है जीवनभर उसी की हो रहती है । अपने प्रेमी से मिलन होनेपर ही वह अपने जीवन को सार्थक मानती है । यदि किन्ही कारणों अथवा परिस्थितियों से ऐसा संभव नहीं होता तो वह अपने जीवन को निरर्थक समझकर प्राण-त्याग तक कर देती है । इसी अनन्य और एकान्त प्रेम की प्रतिष्ठा भारतीय प्रेमिका के शाश्वत रूप में हमे मिलती है । " भारतीय प्रेमिका का आदर्श पार्वती और सावित्री है जो कठिन से कठिन बाधाओं और विघ्नों को अपने प्रेम-बल से पार कर अपने प्रेम का संयोग प्राप्त करती है ।"[१]

१ 'बिंदू अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण' - पृ. ३२८
राधाकृष्ण प्रकाशन -
संस्करण १९६८

प्रेमी-प्रेमिका का प्यार देखकर विवाह का प्रथा स्तत नहीं हुआ। बहुत दिनों से ही नारी को अपना वर-वधू ढूढने की प्रथा है। वर-वधू में प्रेम-भाव बहुत दिनों तक आवश्यक माना जाता रहा। 'स्वयंवर' की प्रथा जो महाभारत-काल - यहाँ तक कि बौध्द-काल में भी मिलता है, यही सिध्द करती है कि नारी को अपना जीवन-साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता दी जाती थी। बाद में यद्यपि स्वयंवर की प्रथा केवल राजन्यवर्ग में ही सीमित रह गई थी, तथापि प्रेम-तत्त्व की महता कभी नहीं घटी।

प्रेमिका का प्यार अटल होता है। वह पहला वहला प्यार होता है, वही निश्चिल प्यार होता है, इसलिए प्रेमिका को प्रेमी ने समझाना चाहिए उसे त्याग दिये तो उसकी पूरी बरबादी हो जाती है इसलिए प्रेमी ने प्रेमिका को समझाना जरूर है हमारे अनेक कवियों ने प्यार की व्याख्या की है कि प्यार करना कोई पाप नहीं समझा जाता, प्यार करना कोई चोरी नहीं है। प्यार शाश्वत है, किसी भी प्रेमिका का प्यार किया नहीं जाता तो प्यार हो जाता है। इसलिए युवक-युवतीने अपने आप को जानने की कोशिश करना चाहिए। एक बार आपने प्यार किया है तो उसे डरकर या डरपोक होकर पिछे नहीं हटना चाहिए। तो वही सची प्रेमिका बन सकती है। प्यार करने के पूर्व इन सब बातोंका सोच-विचार करना चाहिए।

संक्षेप या सारांश रुप में नारी और उसका स्वरुप के बारेमें हम यह कह सकते हैं कि नारी को पूर्वपरंपरासे महत्व दिया गया है। नारी - पुरुषा से श्रेष्ठ मानी गयी है। नारी सर्व-श्रेष्ठ है। वैदिक काल से ही नारी को महत्व दिया गया है। भगवान के साथ नारी का नाम जुड़वा दिया गया है। जैसे राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर आदि पुरातन काल से ही नारी सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है।

नारी समाज का अर्धाङ्ग है। वह पुरुषा की पत्नी ही नहीं वहला गयी वह अर्धांगी और अर्ध स्थान भी कहा है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता' ऐसा

उच्च स्थान नारी को समाज ने दिया है। नारी शब्द में नारी दीर्घ होने से वह पुरुष से उच्चा स्थान प्राप्त कर बैठी है। हिंदू शास्त्रों में नारी को श्री भी कहा गया है। इन सभी से नारी पुरुष से समाज में सर्वत्र उसे उच्चा स्थान प्राप्त है यह स्पष्ट दिखाई देता है। नारी शब्द से ही नारी का स्वरुप बहुत बडा है नारी का अनेक रुप दिखाई देते हैं जैसे देवता, माता, पत्नी, प्रेमिका, बहन, पुत्री, भाभी, सास, दादी, आदि रुपों में समाज में वह निवास करती हैं। लेकिन हमे सिर्फ नारी के चार रुप दिखाई दिये हैं वह प्राचीन कालसे चले आये हैं और उसका स्वरुप नारी का देवता से ही स्पष्ट दिखाई देता है। पहले नारी देवता में दिखाई दी गयी बाद में माँ, याने माता में दिखाई दियी।

नारी को प्राचीन काल से महत्त्व दिया है लेकिन नारी जब देवता का रुप था तब का स्थान हमे अलग दिखाई देता है। भारतीय नारी नवीन जीवन के आदर्श अपनाने लग गई थी और प्रयत्नपूर्वक अपने जीवन को उन आदर्शों के अनुरुप बनाने लग गई थी। इस प्रयत्न में उसे अपने परिवार में अनेक प्रकार का संघर्ष करना पड़ता था। और प्राचीन संस्कार एवं समाज में प्रचलित स्वार्थ और कामुकता से जूझना पडता था। नारी की अवस्था एक और ऊँची दिखाई देती है तो दूसरी ओर उसे परिवार में स्थान नहीं दिया गया नारी केवल काम-वासना ही मानी गयी है। हमारे भारतीय संस्कृती में नारी को उतना महत्त्व नहीं दिया नारी पर बड़ी अत्याचार होते आये तब हमारे महान पुरुषोंने नारी पर होनेवाले अत्याचार उन्हें असह्य हो गये और १९वी शताब्दी में सुधार आंदोलन द्वारा नारी की ओर ध्यान दिया गया। स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहन राय, जैसे महापुरुषोंने बाल विवाह, विधवा - विवाह, देवदासी प्रथा, सती प्रथा आदि प्रथा नष्ट करने का प्रयास किया।

आगे चलकर महात्मा जोतिबा फुले जैसे महान नेता ने नारी को आगे बढा दिया और उसे शिक्षा देकर समाज में पुरुष के बराबर स्थान प्राप्त कर

दिया । समाज आज उस नारी को अपना स्थान प्राप्त कर दिया गया है । लेकिन भारतीय समाज में नारी आज बहुत आगे है नारी को वैसा ही ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है । भारतीय समाज में नारी पुरुषो के साथ अग्रसर है । एक वह आदर्श ही दिखाई गया है । स्वर्गीय पंतप्रधान इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री का स्थान प्राप्त कर एक भारतीय नारी को आदर्श स्थान नहीं तो और क्या हो सकता है । भारतीय नारी यह आज समाज में पुरुषो के साथ बराबर काम तो करती है यह भूषानीय है ।

निष्कर्ष रूपमें हम ये कह सकते हैं कि वैदिक काल में नारी का सामाजिक राजनैतिक सभी स्थानों में महत्वपूर्ण स्थान था । परंतु पुरुषो की अहंता, प्रयत्न, प्रगति के कारण नारी का गौरव अधिक समयतक टिक ना पाया । और नारी विभिन्न प्रकार की पीडाको सहती हुई समय पर समय गुजारती चला गया । आगे कुछ ऐसी नारी सुधारक संस्थाओं ने जन्म लिया । जिन्होंने नारी सुधार के लिए विशेष प्रयत्न किया इन संस्थाओं में प्रमुख रूप से ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि थे । बहुत से समाज सुधारकों के कारण नारियों के लिए शिक्षा के द्वार भी खुले तथा उन्हें स्वतंत्रता भी दी गयी । इतना होते हुए भी आज ये दिखाई देता है कि नारी के दृष्टिकोण को बदल नहीं पायी । परंतु हम ये अवश्य कहेंगे की आज की नारियों की स्थिति मध्यकाल की नारियों के समान दयनीय नहीं है । आज नारी स्वावलंबी है, शिक्षित है, अपने अस्तित्व को पहेचान ली है, और नारी के अंदर आत्म स्वाभिमान भी जागृत हुआ है । नारी के स्वरूप के भिन्न-भिन्न पडावों के हमने देखा । पर आधुनिक युग की नारी पुरुषों के समान हर क्षेत्र में पूरी स्वतंत्रता का उपभोग कर रही है ।